# तृतीय सर्ग

## संवेग-उत्पत्ति

**ततः कदाचिन्मृदुशाद्वलानि पुंस्कोकिलोन्नादितपादपानि ।**
**शुश्राव पद्माकरमण्डितानि गीतैर्निबद्धानि स काननानि ॥ १ ॥**

तब एक बार उसने गीत-निबद्ध काननोंके बारेमें सुना, जो मृदु और हरे तृणोंसे युक्त थे, जिनके पेड़ कोयलोंसे निनादित थे और जो कमलके पोखरोंसे मण्डित थे ॥ १ ॥

**श्रुत्वा ततः स्त्रीजनवल्लभानां मनोज्ञभावं पुरकाननानाम् ।**
**बहिःप्रयाणाय चकार बुद्धिमन्तर्गृहे नाग इवावरुद्धः ॥ २ ॥**

तब स्त्रियोंके प्रिय पुर-काननोंकी मनोहरता सुनकर, घरके भीतर बँधे हाथी-के समान उसने बाहर जानेका विचार किया ॥ २ ॥

**ततो नृपस्तस्य निशम्य भावं पुत्राभिधानस्य मनोरथस्य ।**
**स्नेहस्य लक्ष्म्या वयसश्च योग्यामाज्ञापयामास विहारयात्राम् ॥३॥**

तब पुत्र-नामक उस मनोरथका विचार सुनकर, राजाने स्नेह, लक्ष्मी और वयसके योग्य विहार-यात्राकी आज्ञा दी ॥ ३ ॥

**निवर्तयामास च राजमार्गे संपातमार्तस्य पृथग्जनस्य ।**
**मा भूत्कुमारः सुकुमारचित्तः संविग्नचेता इति मन्यमानः ॥ ४ ॥**

और, राजमार्गपर आर्त जनताका निकलना रोक दिया, यह सोचते हुए कि सुकुमार मनवाले कुमारके चित्तमें कहीं संवेग न हो जाय ॥ ४ ॥

**प्रत्यङ्गहीनान्विकलेन्द्रियांश्च जीर्णातुरादीन् कृपणांश्च दिक्षु ।**
**ततः समुत्सार्य परेण साम्ना शोभां परां राजपथस्य चक्रुः ॥ ५ ॥**

अङ्ग-हीनों, विकलेन्द्रियों, वृद्धों, आतुर आदि लोगों तथा बेचारोंको सब ओर परम शान्तिसे हटा कर, उन ( राज-पुरुषों )ने राज-पथकी परम शोभा की ॥५॥

**ततः कृते श्रीमति राजमार्गे श्रीमान्विनीतानुचरः कुमारः।**
**प्रासादपृष्ठादवतीर्य काले कृताभ्यनुज्ञो नृपमभ्यगच्छत् ॥ ६॥**

तब राज मार्ग शोभा-युक्त किया जानेपर, आज्ञा पाकर, श्रीमान् कुमार विनीत अनुचरोंके साथ प्रासादपरसे समयपर नीचे उतरा और राजाके समीप गया ॥ ६ ॥

**अथो नरेन्द्रः सुतमागताश्रुः शिरस्युपाघ्राय चिरं निरीक्ष्य।**
**गच्छेति चाज्ञापयति स्म वाचा स्नेहान्न चैनं मनसा मुमोच ॥ ७॥**

तब राजाने, जिसे आँसू आ गये थे, पुत्रके शिरको सूँघकर उसे देर तक देखा और "जाओ" कहते हुए आज्ञा दी, किन्तु स्नेह-वश उसे मनसे नहीं छोड़ा ॥ ७ ॥

**ततः स जाम्बूनदभाण्डभृद्भिर्युक्तं चतुर्भिर्निभृतैस्तुरङ्गैः।**
**अक्लीबविद्वच्छुचिरश्मिधारं हिरण्मयं स्यन्दनमारुरोह ॥ ८॥**

तब वह सुवर्ण-आभरण धारण करनेवाले चार शिक्षित तुरंगोंसे युक्त सुवर्ण-रथपर सवार हुआ, जिसका सराथि बलवान्, विद्वान् और पवित्र था ॥ ८ ॥

**ततः प्रकीर्णोज्ज्वलपुष्पजालं विषक्तमाल्यं प्रचलत्पताकम्।**
**मार्गं प्रपेदे सदृशानुयात्रश्चन्द्रः सनक्षत्र इवान्तरिक्षम् ॥ ९॥**

तब जिस मार्गपर उजले फूल बिखरे हुए थे, मालाएँ लटक रही थीं, और पताकाएँ फहरा रही थीं उसपर वह योग्य अनुचरोंके साथ आया, जैसे आकाशमें नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमा ( आवे ) ॥ ९ ॥

**कौतूहलात्स्फीततरैश्च नेत्रैर्नीलोत्पलार्धैरिव कीर्यमाणम्।**
**शनैः शनैः राजपथं जगाहे पौरैः समन्तादभिवीक्ष्यमाणः ॥१०॥**

कौतूहलसे अति-विकसित आँखें, जो आधे-आधे नीले कमलोंके समान थीं, जिस राज-पथपर बिखर रही थीं उसपर चारों ओर पुरवासियों द्वारा देखे जाते हुए उसने धीरे-धीरे प्रवेश किया ॥१०॥

**तं तुष्टुवुः सौम्यगुणेन केचिद्ववन्दिरे दीप्ततया तथान्ये।**
**सौमुख्यतस्तु श्रियमस्य केचिद्वैपुल्यमाशंसिषुरायुषश्च ॥११॥**

कतिपयोंने उसके सौम्य-गुणके लिए उसकी स्तुति की तथा दूसरोंने दीप्तिके लिए उसकी वन्दना की; किन्तु उसकी अनुकूलताके कारण कतिपयोंने उसके लिए लक्ष्मी और दीर्घायुकी कामना की ॥११॥

**निःसृत्य कुब्जाश्च महाकुलेभ्यो व्यूहाश्च कैरातकवामनानाम् ।**
**नार्यः कृशेभ्यश्च निवेशनेभ्यो देवानुयानध्वजवत्प्रणेमुः ॥१२॥**

बड़े-बड़े कुलोंसे झुण्ड-के-झुण्ड कुबड़े किरात व वामन तथा छोटे-छोटे घरोंसे स्त्रियाँ निकल आईं। उन सबने उसे वैसे ही प्रणाम किया, जैसे (इन्द्र-) देवके जुलूसकी ध्वजा को ॥१२॥

**ततः कुमारः खलु गच्छतीति श्रुत्वा स्त्रियः प्रेष्यजनात्प्रवृत्तिम् ।**
**दिदृक्षया हर्म्यतलानि जग्मुर्जनेन मान्येन कृताभ्यनुज्ञाः ॥१३॥**

तब "कुमार जा रहा है" यह समाचार नौकरोंसे सुनकर स्त्रियाँ गुरु-जनसे आज्ञा पाकर, उसे देखनेकी इच्छासे प्रासाद-तलपर गईं ॥१३॥

**ताः स्रस्तकाञ्चीगुणविघ्निताश्च सुप्तप्रबुद्धाकुललोचनाश्च ।**
**वृत्तान्तविन्यस्तविभूषणाश्च कौतूहलेनानिभृताः परीयुः ॥१४॥**

गिरती करधनीसे उन्हें बाधा हुई, सोकर उठनेसे उनकी आँखें आकुल थीं, समाचार सुनकर उन्होंने गहने पहने, कौतूहलके कारण अविनीत होकर वे गईं ॥१४॥

**प्रासादसोपानतलप्रणादैः काञ्चीरवैर्नूपुरनिस्वनैश्च ।**
**वित्रासयन्त्यो गृहपक्षिसङ्घानन्योन्यवेगांश्च समाक्षिपन्त्यः ॥१५॥**

महलके सोपानपर पद-तलोंके निनादसे, करधनियोंके शब्दसे और नूपुरोंकी ध्वनिसे घरेलू पक्षियोंके झुण्डोंको डराती हुई तथा एक दूसरेके वेगपर आक्षेप करती हुई ( वे गईं ) ॥१५॥

**कासाञ्चिदासां तु वराङ्गनानां जातत्वराणामपि सोत्सुकानाम् ।**
**गतिं गुरुत्वाज्जगृहुर्विशालाः श्रोणीरथाः पीनपयोधराश्च ॥१६॥**

उत्सुक होकर शीघ्रता करनेपर भी उन उत्तम स्त्रियोंमेंसे कतिपयोंकी गतिको उनके अपने ही विशाल नितम्बों और पीन पयोधरोंने रोका ॥१६॥

**शीघ्रं समर्थापि तु गन्तुमन्या गतिं निजग्राह ययौ न तूर्णम् ।**
**ह्रियाप्रगल्भा विनिगूहमाना रहःप्रयुक्तानि विभूषणानि ॥१७॥**

शीघ्र जानेमें समर्थ होनेपर भी दूसरीने अपनी चालको रोक लिया और वह तेजीसे नहीं गई, वह संकोचशीला एकान्तमें पहने गहनोंको लाजसे छिपाने लगी ॥१७॥

**परस्परोत्पीडनपिण्डितानां संमर्दसंक्षोभितकुण्डलानाम् ।**
**तासां तदा सस्वनभूषणानां वातायनेष्वप्रशमो बभूव ॥१८॥**

परस्पर उत्पीड़ित होती हुई वे इकट्ठी हुईं, एक दूसरेकी रगड़से उनके कुण्डल चञ्चल हुए, उनके गहने बज रहे थे। अतः उस समय खिड़कियोंपर अशान्ति हुई ॥१८॥

**वातायनेभ्यस्तु विनिःसृतानि परस्परायासितकुण्डलानि ।**
**स्त्रीणां विरेजुर्मुखपङ्कजानि सक्तानि हर्म्येष्विव पङ्कजानि ॥१९॥**

खिड़कियोंसे निकले हुए स्त्रियोंके मुख-कमल, जो एक दूसरेके कुण्डल संक्षुब्ध कर रहे थे, ऐसे शोभित हुए जैसे महलोंमें कमल लगे हों ॥१९॥

**ततो विमानैर्युवतीकरालैः कौतूहलोद्घाटितवातयानैः ।**
**श्रीमत्समन्तान्नगरं बभासे वियद्विमानैरिव साप्सरोभिः ॥२०॥**

तब उन विमानों ( महलों ) से, जो युवतियोंसे दन्तुर लगते थे ( अर्थात् दाँत निकालकर हँस रहे थे ) और कौतूहलसे जिनके झरोखे खोल दिये गये थे, वह श्री-सम्पन्न नगर चारों ओर इस प्रकार भासित हुआ जिस प्रकार अप्सरा-युक्त देव-प्रासादोंसे स्वर्ग ॥२०॥

**वातायनानामविशालभावादन्योन्यगण्डार्पितकुण्डलानाम् ।**
**मुखानि रेजुः प्रमदोत्तमानां बद्धाः कलापा इव पङ्कजानाम् ॥२१॥**

खिड़कियाँ बड़ी-बड़ी नहीं होनेके कारण जो उत्तम प्रमदाएँ एक दूसरेके गालोंपर अपने कुण्डल रक्खे हुए थीं, उनके मुख ऐसे विराजे, जैसे कमलोंके बँधे हुए गुच्छे हों ॥२१॥

**तं ताः कुमारं पथि वीक्षमाणाः स्त्रियो बभुर्गामिव गन्तुकामाः ।**
**ऊर्ध्वोन्मुखाश्चैनमुदीक्षमाणा नरा बभुर्द्यामिव गन्तुकामाः ॥२२॥**

उस कुमारको मार्गमें जाते देखकर स्त्रियोंने मानो ( महलोंसे ) पृथ्वीपर जानेकी कामना की और ऊपर मुख उठाकर उसे देखते हुए पुरुषोंने मानो आकाशमें जानेकी कामना की ॥२२॥

**दृष्ट्वा च तं राजसुतं स्त्रियस्ता जाज्वल्यमानं वपुषा श्रिया च ।**
**धन्यास्यभार्येति शनैरवोचञ्शुद्धैर्मनोभिः खलु नान्यभावात् ॥२३॥**

सौन्दर्य और विभूतिसे चमकते हुए राजाके उस पुत्रको देखकर स्त्रियोंने शुद्ध मनसे, निश्चय ही अन्य भावसे नहीं, धीरे-धीरे कहा—"धन्य है इसकी भार्या" ॥२३॥

**अयं किल व्यायतपीनबाहू रूपेण साक्षादिव पुष्पकेतुः ।**
**त्यक्त्वा श्रियं धर्ममुपैष्यतीति तस्मिन् हि ता गौरवमेव चक्रुः ॥२४॥**

लम्बी व मोटी बाहुवाला यह कुमार, जो रूपमें साक्षात् पुष्पकेतु (कामदेव) के समान है, लक्ष्मीको छोड़कर धर्मके समीप जायगा—इस प्रकार उन्होंने उसका गौरव ही किया ॥२४॥

**कीर्णं तथा राजपथं कुमारः पौरैर्विनीतैः शुचिधीरवेषैः ।**
**तत्पूर्वमालोक्य जहर्ष किञ्चिन्मेने पुनर्भावमिवात्मनश्च ॥२५॥**

शुचि और धीर वेषवाले विनीत पुर-वासियोंसे उस प्रकार भरे हुए राज-पथ-को पहले पहल देखकर, वह प्रसन्न हुआ और उसने अपना कुछ पुनर्जन्म-सा माना ॥ २५ ॥

**पुरं तु तत्स्वर्गमिव प्रहृष्टं शुद्धाधिवासाः समवेक्ष्य देवाः ।**
**जीर्णं नरं निर्ममिरे प्रयातुं संचोदनार्थं क्षितिपात्मजस्य ॥२६॥**

उस नगरको स्वर्गके समान प्रसन्न देखकर, शुद्धाधिवास देवोंने एक वृद्ध पुरुषको बनाया कि वह राजाके पुत्रको ( घरसे वनको ) प्रयाण करनेके लिए प्रेरित करे ॥ २६ ॥

**ततः कुमारो जरयाभिभूतं दृष्ट्वा नरेभ्यः पृथगाकृतिं तम् ।**
**उवाच सङ्ग्राहकमागतास्थस्तत्रैव निष्कम्पनिविष्टदृष्टिः ॥२७॥**

तब कुमारने जरा ( =वृद्धावस्था )से अभिभूत उस पुरुषको जिसकी आकृति ( अन्य ) पुरुषोंसे पृथक् थी, देखा और उसीको निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए ध्यानमें आकर उसने सारथिसे कहा:—॥ २७ ॥

**क एष भोः सूत नरोऽभ्युपेतः कैशैः सितैर्यष्टिविषक्तहस्तः ।**
**भ्रूसंवृताक्षः शिथिलानताङ्गः किं विक्रियैषा प्रकृतिर्यदृच्छा ॥२८॥**

"हे सारथि, यह कौन पुरुष आया ? इसके केश सफेद हैं, हाथमें लाठी है, भौंहोंसे आँखें ढकी हैं, अंग ढीले व झुके हैं। क्या यह विकार है ? या स्वभाव ? या संयोग ?" ॥ २८ ॥

**इत्येवमुक्तः स रथप्रणेता निवेदयामास नृपात्मजाय।**
**संरक्ष्यमप्यर्थमदोषदर्शी तैरेव देवैः कृतबुद्धिमोहः ॥२९॥**

ऐसा कहे जानेपर उस सारथिने राजाके पुत्रसे गोपनीय बात भी निवेदन कर दी, इसमें अपना दोष नहीं देखा, उन्हीं देवोंने उसका बुद्धि-मोह जो कर दिया था ॥ २९ ॥

**रूपस्य हन्त्री व्यसनं बलस्य शोकस्य योनिर्निधनं रतीनाम्।**
**नाशः स्मृतीनां रिपुरिन्द्रियाणामेषा जरा नाम यथैष भग्नः ॥३०॥**

'रूपकी हत्या करनेवाली, बलकी विपत्ति, शोककी उत्पत्ति (–भूमि) आनन्दकी मृत्यु, स्मृतिका नाश करनेवाली, इन्द्रियोंका शत्रु यह जरा है, जिसने इसे भग्न कर दिया है ॥ ३० ॥

**पीतं ह्यनेनापि पयः शिशुत्वे कालेन भूयः परिसृप्रमुर्व्याम्।**
**क्रमेण भूत्वा च युवा वपुष्मान् क्रमेण तेनैव जरामुपेतः ॥३१॥**

बचपनमें इसने भी दूध पिया, फिर काल-क्रमसे पृथिवीपर पेटके बल चला, क्रमसे सुन्दर युवक हुआ, और उसी क्रमसे जराको प्राप्त हुआ है" ॥३१॥

**इत्येवमुक्ते चलितः स किञ्चिद्राजात्मजः सूतमिदं बभाषे।**
**किमेष दोषो भविता ममापीत्यस्मै ततः सारथिरभ्युवाच ॥३२॥**

ऐसा कहे जानेपर कुछ विचलित होकर उस राजात्मजने सारथिसे कहा—"क्या यह दोष मुझे भी होगा ?" तब सारथिने उसे कहा:—॥ ३२ ॥

**आयुष्मतोऽप्येष वयःप्रकर्षो निःसंशयं कालवशेन भावी।**
**एवं जरां रूपविनाशयित्रीं जानाति चैवेच्छति चैव लोकः ॥३३॥**

"आप आयुष्मान्की भी यह वृद्धावस्था कालवश निःसंदेह होगी। ऐसी रूप-विनाशिनी जराको लोग जानते हैं और इसे चाहते हैं" ॥३३॥

**ततः स पूर्वाशयशुद्धबुद्धिर्विस्तीर्णकल्पाचितपुण्यकर्मा।**
**श्रुत्वा जरां संविविजे महात्मा महाशनेर्घोषमिवान्तिके गौः ॥३४॥**

तब वह महात्मा, पूर्वके विचारोंसे जिसकी बुद्धि शुद्ध हो गई थी, और अनेक कल्पोंमें जिसके पुण्य कर्म एकत्र हुए थे, जराको सुनकर वैसे ही संविग्न हुआ, जैसे समीपमें महावज्रका शब्द सुनकर गाय ॥ ३४ ॥

**निःश्वस्य दीर्घं स्वशिरः प्रकम्प्य तस्मिंश्च जीर्णे विनिवेश्य चक्षुः ।**
**तां चैव दृष्ट्वा जनतां सहर्षां वाक्यं स संविग्न इदं जगाद ॥३५॥**

लम्बी साँस लेकर, अपना शिर कँपाकर, उस वृद्धकी ओर दृष्टि लगाये हुए, उस जनताको प्रसन्न देखकर, उस संविग्नने यह वाक्य कहा:—॥३५॥

**एवं जरा हन्ति च निर्विशेषं स्मृतिं च रूपं च पराक्रमं च ।**
**न चैव संवेगमुपैति लोकः प्रत्यक्षतोऽपीदृशमीक्षमाणः ॥३६॥**

"इस प्रकार जरा, स्मृति रूप और पराक्रमकी विना भेद-भावके हत्या करती है; और प्रत्यक्ष ऐसा देखते हुए भी लोगोंको संवेग नहीं होता है ॥३६॥

**एवं गते सूत निवर्तयाश्वान् शीघ्रं गृहाण्येव भवान्प्रयातु ।**
**उद्यानभूमौ हि कुतो रतिर्मे जराभये चेतसि वर्तमाने ॥३७॥**

ऐसा होनेपर, हे सारथि, घोड़ोंको लौटाइये, शीघ्र घरको ही आप चलें; चित्तमें जराका भय रहनेपर उद्यान-भूमिमें मुझे कहाँसे आनन्द होगा ?" ॥३७॥

**अथाज्ञया भर्तृसुतस्य तस्य निवर्तयामास रथं नियन्ता ।**
**ततः कुमारो भवनं तदेव चिन्तावशः शून्यमिव प्रपेदे ॥३८॥**

अनन्तर उस स्वामि-पुत्रकी आज्ञासे सारथिने रथको लौटाया । तब कुमार उसी महलमें पहुँचा, जो उस चिन्तितके लिए शून्य-सा था ॥३८॥

**यदा तु तत्रैव न शर्म लेभे जरा जरेति प्रपरीक्षमाणः ।**
**ततो नरेन्द्रानुमतः स भूयः क्रमेण तेनैव बहिर्जगाम ॥३९॥**

"जरा-जरा ( क्या है )" इस प्रकार ( इसे ) परखते हुए जब उसने वहाँ भी शान्ति नहीं पाई, तब राजाकी अनुमतिसे वह फिर उसी क्रमसे बाहर गया ॥३९॥

**अथापरं व्याधिपरीतदेहं त एव देवाः ससृजुर्मनुष्यम् ।**
**दृष्ट्वा च तं सारथिमाबभाषे शौद्धोदनिस्तद्गतदृष्टिरेव ॥४०॥**

तब उन्हीं देवोंने रोगसे ग्रस्त देहवाले दूसरे मनुष्यका सृजन किया

और उसे देखकर शुद्धोदनके पुत्रने उसीकी ओर दृष्टि किये हुए सारथिसे कहाः—॥४०॥

**स्थूलोदरः श्वासचलच्छरीरः स्रस्तांसबाहुः कृशपाण्डुगात्रः।**
**अम्बेति वाचं करुणं ब्रुवाणः परं समाश्रित्य नरः क एषः ॥४१॥**

"यह कौन मनुष्य है? इसका पेट फूला हुआ है, साँससे शरीर काँप रहा है, कन्धे और बाहुएँ ढीली हैं, गात दुबला और पीला है। दूसरेका सहारा लेकर करुण स्वरसे 'माँ माँ' कह रहा है ॥४१॥

**ततोऽब्रवीत्सारथिरस्य सौम्य धातुप्रकोपप्रभवः प्रवृद्धः।**
**रोगाभिधानः सुमहाननर्थः शक्तोऽपि येनैष कृतोऽस्वतन्त्रः ॥४२॥**

तब सारथिने इसे कहा—"हे सौम्य (त्रि–) धातु-प्रकोपसे उत्पन्न होकर बढ़ा हुआ यह रोगनामक महा-अनर्थ है, जिसने इस शक्तिमान्को भी परतन्त्र कर दिया है" ॥४२॥

**इत्यूचिवान् राजसुतः स भूयस्तं सानुकम्पो नरमीक्षमाणः।**
**अस्यैव जातो पृथगेष दोषः सामान्यतो रोगभयं प्रजानाम् ॥४३॥**

उस मनुष्यको अनुकम्पाके साथ देखते हुए उस नृपात्मजने पुनः पूछा—"यह दोष केवल इसीको हुआ या रोगका भय समान रूपसे (सब) प्रजाओं को है?" ॥४३॥

**ततो बभाषे स रथप्रणेता कुमार साधारण एष दोषः।**
**एवं हि रोगैः परिपीड्यमानो रुजातुरो हर्षमुपैति लोकः ॥४४॥**

तब वह सारथि बोला—"हे कुमार, यह दोष साधारण है। इस प्रकार रोगोंसे परिपीड़ित होता हुआ, कष्टसे आतुर संसार हर्षको प्राप्त होता है" ॥४४॥

**इति श्रुतार्थः स विषण्णचेताः प्रावेपताम्बूर्मिगतः शशीव।**
**इदं च वाक्यं करुणायमानः प्रोवाच किञ्चिन्मृदुना स्वरेण ॥४५॥**

यह व्याख्या सुनकर, वह विषण्ण-चित्त (हो गया और) जल-तरंगमें पड़ते चन्द्र (–प्रतिबिम्ब) के समान काँपने लगा और दयासे द्रवीभूत होते हुए उसने कुछ मृदु स्वरसे यह वाक्य कहाः—॥४५॥

---

४२—त्रिधातु = कफ, पित्त, वायु।

**इदं च रोगव्यसनं प्रजानां पश्यंश्च विश्रम्भमुपैति लोकः।**
**विस्तीर्णमज्ञानमहो नराणां हसन्ति ये रोगभयैरमुक्ताः ॥४६॥**

"प्रजाओंकी यह रोगरूप विपत्ति देखते हुए भी संसार विश्वस्त (=निर्भीक) रहता है। अहो, ( कितना ) विशाल अज्ञान है ( इन ) मनुष्योंका, जो रोग-भयसे अमुक्त होकर भी हँस रहे हैं ॥४६॥

**निवर्त्यतां सूत बहिःप्रयाणान्नरेन्द्रसद्मैव रथः प्रयातु।**
**श्रुत्वा च मे रोगभयं रतिभ्यः प्रत्याहृतं संकुचतीव चेतः ॥४७॥**

हे सारथि, बाहर जानेसे रथको लौटाइये, यह राज-महलको ही चले। और रोग-भय सुनकर विषयोंसे प्रत्याहृत मेरा मन सिकुड़-सा रहा है" ॥४७॥

**ततो निवृत्तः स निवृत्तहर्षः प्रध्यानयुक्तः प्रविवेश वेश्म।**
**तं द्विस्तथा प्रेक्ष्य च संनिवृत्तं पर्येषणं भूमिपतिश्चकार ॥४८॥**

तब हर्ष-रहित होकर वह लौटा, चिन्तित होकर अपने महलमें घुसा। और, उसे दो बार उस प्रकार लौटा देखकर, राजाने जिज्ञासा की ॥४८॥

**श्रुत्वा निमित्तं तु निवर्तनस्य संत्यक्तमात्मानमनेन मेने।**
**मार्गस्य शौचाधिकृताय चैव चुक्रोश रुष्टोऽपि च नोग्रदण्डः ॥४९॥**

लौटनेका कारण सुनकर उसने अपनेको उससे परित्यक्त माना। और मार्गके शौचाधिकारीकी भर्त्सना की, रुष्ट होनेपर भी वह उग्रदण्ड नहीं हुआ अर्थात् कठोर दण्ड नहीं दिया ॥४९॥

**भूयश्च तस्मै विदधे सुताय विशेषयुक्तं विषयप्रचारम्।**
**चलेन्द्रियत्वादपि नाम सक्तो नास्मान्विजह्यादिति नाथमानः ॥५०॥**

और फिर उस पुत्रके लिए विशेष विषय-सेवनका प्रबन्ध किया, इस आशासे कि—"शायद इन्द्रिय-चञ्चलताके कारण ( विषयोंमें ) आसक्त होकर ( यह ) हमें न छोड़े" ॥५०॥

**यदा च शब्दादिभिरिन्द्रियार्थैरन्तःपुरे नैव सुतोऽस्य रेमे।**
**ततो बहिर्व्यादिशति स्म यात्रां रसान्तरं स्यादिति मन्यमानः ॥५१॥**

और जब शब्द आदि इन्द्रिय-विषयोंसे अन्तःपुरमें उसके पुत्रको आनन्द नहीं हुआ, तब ( राजाने ) बाहर यात्रा करनेका आदेश दिया, यह समझते हुए कि ( इससे कहीं ) रुचि-परिवर्तन हो जाय ॥५१॥

**स्नेहाच्च भावं तनयस्य बुद्ध्वा स रागदोषानविचिन्त्य कांश्चित् ।**
**योग्याः समाज्ञापयति स्म तत्र कलास्वभिज्ञा इति वारमुख्याः ॥५२॥**

और स्नेहसे पुत्रका भाव समझकर तथा रागके किन्हीं दोषोंका विना विचार किए ही उसने कलाओंमें निपुण योग्य वारमुख्यों (= सम्मानित वेश्याओं) को वहाँ (रहनेकी) आज्ञा दी ॥५२॥

**ततो विशेषेण नरेन्द्रमार्गे स्वलङ्कृते चैव परीक्षिते च ।**
**व्यत्यस्य सूतं च रथं च राजा प्रस्थापयामास बहिः कुमारम् ॥५३॥**

तब विशेषताके साथ राज-मार्ग अलङ्कृत और परीक्षित होनेपर, सारथि एवं रथको बदलकर राजाने कुमारको बाहर प्रस्थान कराया ॥५३॥

**ततस्तथा गच्छति राजपुत्रे तैरेव देवैर्विहितो गतासुः ।**
**तं चैव मार्गे मृतमुह्यमानं सूतः कुमारश्च ददर्श नान्यः ॥५४॥**

जब राजाका पुत्र उस प्रकार जा रहा था, तब उन्हीं देवोंने एक निष्प्राण (व्यक्ति) को बनाया। और, मार्गमें ढोये जाते उस मरे हुए को सारथि और कुमार ने देखा, दूसरे किसी ने नहीं ॥५४॥

**अथाब्रवीद्राजसुतः स सूतं नरैश्चतुर्भिर्ह्रियते क एषः ।**
**दीनैर्मनुष्यैरनुगम्यमानो (वि)भूषितश्चाप्यवरुद्यते च ॥५५॥**

तब उस राज-कुमारने सारथि से कहा—"यह कौन है? इसे चार पुरुष लिये जा रहे हैं, दीन मनुष्य इसके पीछे-पीछे जा रहे हैं, और विशेषतासे भूषित होनेपर भी इसके लिए रोया जा रहा है" ॥५५॥

**ततः स शुद्धात्मभिरेव देवैः शुद्धाधिवासैरभिभूतचेताः ।**
**अवाच्यमप्यर्थमिमं नियन्ता प्रव्याजहारार्थवदीश्वराय ॥५६॥**

तब शुद्ध स्वभाववाले शुद्धाधिवास देवोंने जिसका चित्त अभिभूतकर दिया था उस सारथिने यह अवाच्य बात भी (उस) नर-श्रेष्ठ से कही:—॥५६॥

**बुद्धीन्द्रियप्राणगुणैर्वियुक्तः सुप्तो विसंज्ञस्तृणकाष्ठभूतः ।**
**संवर्ध्य संरक्ष्य च यत्नवद्भिः प्रियप्रियैस्त्यज्यत एष कोऽपि ॥५७॥**

"यह कोई है, जो बुद्धि इन्द्रियों प्राणों और गुणोंसे वियुक्त, (सदाके लिए) सोया हुआ और संज्ञा-हीन है, तथा तृण एवं काष्ठ (के समान)

हो गया है। प्रयत्नपूर्वक संवर्धन और संरक्षण करके भी प्रिय (स्व-) जन इसे छोड़ रहे हैं" ॥५७॥

**इति प्रणेतुः स निशम्य वाक्यं संचुक्षुभे किञ्चिदुवाच चैनम्।**
**किं केवलोऽस्यैव जनस्य धर्मः सर्वप्रजानामयमीदृशोऽन्तः ॥५८॥**

सारथिका वाक्य सुनकर, वह कुछ संक्षुब्ध हुआ और उसे कहा—"क्या यह धर्म केवल इसी मनुष्य का है या सब प्रजाओं (= जीवों)का अन्त ऐसा ही है?" ॥५८॥

**ततः प्रणेता वदति स्म तस्मै सर्वप्रजानामिदमन्तकर्म।**
**हीनस्य मध्यस्य महात्मनो वा सर्वस्य लोके नियतो विनाशः ॥५९॥**

तब सारथिने उससे कहा—"सब प्रजाओं (= जीवों)का यह अन्तिम कर्म है। हीन मध्य या महात्माका, संसारमें सबका, विनाश नियत है" ॥५९॥

**ततः स धीरोऽपि नरेन्द्रसूनुः श्रुत्वैव मृत्युं विषसाद सद्यः।**
**अंसेन संश्लिष्य च कूबराग्रं प्रोवाच निह्रादवता स्वरेण ॥६०॥**

तब धीर होनेपर भी उस राजकुमार को, मृत्यु (की बात) सुनकर, तुरत विषाद हो गया। और कन्धेसे कूबरके अग्रभागका सहारा लेकर, उसने गम्भीर स्वर से कहाः—॥६०॥

**इयं च निष्ठा नियता प्रजानां प्रमाद्यति त्यक्तभयश्च लोकः।**
**मनांसि शङ्के कठिनानि नृणां स्वस्थास्तथा ह्यध्वनि वर्तमानाः ॥६१॥**

"प्रजाओंका यह विनाश नियत है और संसार भय छोड़कर असावधानी कर रहा है। मनुष्योंके मन, मैं सोचता हूँ, कठोर हैं, क्योंकि (मृत्यु-) मार्गमें रहते हुए वे उस प्रकार सुखी हैं ॥६१॥

**तस्माद्रथः सूत निवर्त्यतां नो विहारभूमेर्न हि देशकालः।**
**जानन्विनाशं कथमार्तिकाले सचेतनः स्यादिह हि प्रमत्तः ॥६२॥**

इसलिए, हे सारथि, हमारे रथको लौटाइये, विहार-भूमि (में जाने)का (यह) देश-काल नहीं है। अपना विनाश जानता हुआ (कोई भी) बुद्धिमान् संकट-कालमें कैसे असावधान हो सकता है?" ॥६२॥

---

६०—कूबर = रथका कोई भाग।

**इति ब्रुवाणेऽपि नराधिपात्मजे निवर्तयामास स नैव तं रथम्।**
**विशेषयुक्तं तु नरेन्द्रशासनात्स पद्मषण्डं वनमेव निर्ययौ ॥६३॥**

राज-पुत्रके ऐसा बोलते रहनेपर भी उसने रथको नहीं लौटाया, किन्तु राजाकी आज्ञासे वह पद्मषण्ड वनको निकल गया, जो विशेषतासे युक्त था ॥६३॥

**ततः शिवं कुसुमितबालपादपं परिभ्रमत्प्रमुदितमत्तकोकिलम्।**
**विमानवत्स कमलचारुदीर्घिकं ददर्श तद्वनमिव नन्दनं वनम् ॥६४॥**

तब उसने कुसुमित बाल-पादपों, घूमते हुए प्रमुदित मत्त कोकिलों, विमानों, तथा कमलोंके सुन्दर पोखरोंसे युक्त उस भव्य वनको देखा, जो नन्दन-वनके समान था ॥ ६४ ॥

**वराङ्गनागणकलिलं नृपात्मजस्ततो बलाद्वनमतिनीयते स्म तत्।**
**वराप्सरोवृतमलकाधिपालयं नवव्रतो मुनिरिव विघ्नकातरः ॥६५॥**

इति बुद्धचरिते महाकाव्ये संवेगोत्पत्तिर्नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

तब श्रेष्ठ स्त्रियोंसे भरे वनमें राजाका पुत्र बलात् ले जाया गया, जैसे श्रेष्ठ अप्सराओंसे पूर्ण कुबेर-प्रासादमें नया व्रतवाला विघ्न-कातर मुनि ( बलात् ले जाया जा रहा हो ) ॥ ६५ ॥

बुद्धचरित महाकाव्यका "संवेग-उत्पत्ति" नामक
तृतीय सर्ग समाप्त ।

---

६५—विघ्न-कातर = विघ्न ( पड़नेके भय ) से कातर ।